

## Chapter चौदह

### संध्या समय दिति का गर्भ-धारण

श्रीशुक उवाच

निशम्य कौषारविणोपवर्णितां

हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ।

पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलि-

र्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; निशम्य—सुनकर; कौषारविणा—मैत्रेय मुनि द्वारा; उपवर्णिताम्—वर्णित; हरेः—भगवान् की; कथाम्—कथा; कारण—पृथ्वी उठाने के कारण; सूकर-आत्मनः—सूकर अवतार; पुनः—फिर; सः—उसने; पप्रच्छ—पूछा; तम्—उस ( मैत्रेय ) से; उद्यत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े हुए; न—कभी नहीं; च—भी; अति-तृप्तः—अत्यधिक तृप्त; विदुरः—विदुर; धृत-व्रतः—व्रत लिए हुए ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : महर्षि मैत्रेय से वराह रूप में भगवान् के अवतार के विषय में सुनकर दृढ़संकल्प विदुर ने हाथ जोड़कर उनसे भगवान् के अगले दिव्य कार्यों के विषय में सुनाने की प्रार्थना की, क्योंकि वे ( विदुर ) अब भी तृप्त अनुभव नहीं कर रहे थे ।

विदुर उवाच

तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ।

आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

विदुरः उवाच—श्री विदुर ने कहा; तेन—उसके द्वारा; एव—निश्चय ही; तु—लेकिन; मुनि-श्रेष्ठ—हे मुनियों में श्रेष्ठ; हरिणा—भगवान् द्वारा; यज्ञ-मूर्तिना—यज्ञ का स्वरूप; आदि—मूल; दैत्यः—असुर; हिरण्याक्षः—हिरण्याक्ष नामक; हतः—मारा गया; इति—इस प्रकार; अनुशुश्रुम—उसी क्रम में सुना है ।

श्री विदुर ने कहा : हे मुनिश्रेष्ठ, मैंने शिष्य-परम्परा से यह सुना है कि आदि असुर हिरण्याक्ष उन्हीं यज्ञ रूप भगवान् ( वराह ) द्वारा मारा गया था ।

तात्पर्य : जैसाकि पहले कहा जा चुका है, वराह अवतार दो कल्पों में प्रकट हुआ था—स्वायम्भुव कल्प तथा चाक्षुष कल्प । दोनों ही कल्पों में भगवान् का वराह अवतार हुआ था, किन्तु स्वायम्भुव कल्प में उन्होंने ब्रह्माण्ड के जल के भीतर से पृथ्वी को ऊपर उठाया था जबकि चाक्षुष कल्प में उन्होंने प्रथम असुर हिरण्याक्ष का वध किया था । स्वायम्भुव कल्प में उन्होंने श्वेत रंग धारण किया था और चाक्षुष कल्प में लाल । विदुर ने पहले ही इनमें से एक के विषय में सुन रखा था और अब वे दूसरे के

विषय में सुनने का प्रस्ताव कर रहे थे। ये दोनों भिन्न-भिन्न वर्णित अवतार एक ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

तस्य चोद्धरतः क्षौणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया ।  
दैत्यराजस्य च ब्रह्मन्कस्माद्धेतोरभूमृधः ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—उसका; च—भी; उद्धरतः—उठाते हुए; क्षौणीम्—पृथ्वी लोक को; स्व-दंष्ट्र-अग्रेण—अपनी दाढ़ के सिरे से; लीलया—अपनी लीला में; दैत्य-राजस्य—दैत्यों के राजा का; च—तथा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कस्मात्—किस; हेतोः—कारण से; अभूत्—हुआ; मृधः—युद्ध।

हे ब्राह्मण, जब भगवान् अपनी लीला के रूप में पृथ्वी ऊपर उठा रहे थे, तब उस असुरराज तथा भगवान् वराह के बीच, युद्ध का क्या कारण था?

श्रद्धधानाय भक्ताय ब्रूहि तज्जन्मविस्तरम् ।  
ऋषे न तृप्यति मनः परं कौतूहलं हि मे ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

श्रद्धधानाय—श्रद्धावान् पुरुष के लिए; भक्ताय—भक्त के लिए; ब्रूहि—कृपया बतलाएँ; तत्—उसका; जन्म—आविर्भाव; विस्तरम्—विस्तार से; ऋषे—हे ऋषि; न—नहीं; तृप्यति—सन्तुष्ट होता है; मनः—मन; परम्—अत्यधिक; कौतूहलम्—जिज्ञासु; हि—निश्चय ही; मे—मेरा।

मेरा मन अत्यधिक जिज्ञासु बन चुका है, अतएव भगवान् के आविर्भाव की कथा सुन कर मुझे तुष्टि नहीं हो रही है। इसलिए आप इस श्रद्धावान् भक्त से और अधिक कहें।

तात्पर्य : जो वास्तव में श्रद्धावान् तथा जिज्ञासु होता है, वही भगवान् के आविर्भाव तथा तिरोभाव की दिव्य लीलाएँ सुनने के लिए सुपात्र है। विदुर ऐसे दिव्य सन्देशों को ग्रहण करने के उपयुक्त पात्र थे।

#### मैत्रेय उवाच

साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ।  
यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ५ ॥

#### शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; साधु—भक्त; वीर—हे योद्धा; त्वया—तुम्हारे द्वारा; पृष्टम्—पूछी गयी; अवतार-कथाम्—अवतार की कथाएँ; हरेः—भगवान् की; यत्—जो; त्वम्—तुम स्वयं; पृच्छसि—मुझसे पूछ रहे हो; मर्त्यानाम्—मर्त्यों के; मृत्यु-पाश—जन्म-मृत्यु की शृंखला; विशातनीम्—मोक्ष का स्रोत।

महर्षि मैत्रेय ने कहा : हे योद्धा, तुम्हारे द्वारा की गई जिज्ञासा एक भक्त के अनुरूप है,

क्योंकि इसका सम्बन्ध भगवान् के अवतार से है। वे मर्त्यों को जन्म-मृत्यु की शृंखला से मोक्ष दिलाने वाले हैं।

**तात्पर्य :** महर्षि मैत्रेय ने विदुर को योद्धा के रूप में सम्बोधित किया, क्योंकि वे न केवल कुरुवंश से सम्बन्धित थे, अपितु वराह तथा नृसिंह अवतारों में भगवान् के वीरतापूर्ण कार्यों के विषय में सुनने के लिए उत्सुक थे। चूँकि ये जिज्ञासाएँ भगवान् के विषय में थीं इसलिए ये एक भक्त के सर्वथा अनुकूल थीं। भक्त को अन्य किसी संसारी कथा सुनने में कोई रुचि नहीं रहती। वैसे संसारी युद्ध की अनेक कथाएँ हैं, किन्तु भक्त इन्हें सुनने के लिए उन्मुख नहीं होता। भगवान् जिन युद्धकथाओं में भाग लेते हैं उनमें मृत्यु का युद्ध नहीं रहता, अपितु मायापाश के विरुद्ध युद्ध होता है, जिसके कारण मनुष्य को बारम्बार जन्म तथा मृत्यु स्वीकार करनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति भगवान् की युद्धकथाओं के सुनने में आनन्द प्राप्त करता है, वह जन्म-मृत्यु के पाश से मुक्त हो जाता है। मूर्ख लोग कुरुक्षेत्र के युद्ध में कृष्ण के सम्मिलित होने के विषय में सन्देह करते हैं, क्योंकि वे यह नहीं जानते कि उनके भाग लेने से उन लोगों की मुक्ति सुनिश्चित हो गई थी जो युद्धभूमि में उपस्थित थे। भीष्मदेव ने कहा है कि कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में उपस्थित सारे लोगों को मृत्यु के बाद उन्हें अपने मूल आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हो गये। अतएव भगवान् की युद्धकथाओं का सुनना अन्य किसी भक्ति के ही समान है।

**ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयार्भकः ।**

**मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ६ ॥**

#### शब्दार्थ

यया—जिससे; उत्तानपदः—राजा उत्तानपाद; पुत्रः—पुत्र; मुनिना—मुनि द्वारा; गीतया—गाया जाकर; अर्भकः—शिषु; मृत्योः—मृत्यु का; कृत्वा—रखते हुए; एव—निश्चय ही; मूर्ध्न्यङ्घ्रि—सिर पर; अङ्घ्रिम्—पाँव; आरुरोह—चढ़ गया; हरेः—भगवान् के; पदम्—धाम तक।

इन कथाओं को मुनि ( नारद ) से सुनकर राजा उत्तानपाद का पुत्र ( ध्रुव ) भगवान् के विषय में प्रबुद्ध हो सका और मृत्यु के सिर पर पाँव रखते हुए वह भगवान् के धाम पहुँच गया।

**तात्पर्य :** अपना शरीर त्याग करते समय राजा उत्तानपाद के पुत्र महाराज ध्रुव के पास सुनन्द तथा अन्य पुरुष आये जिन्होंने भगवद्धाम में उनका स्वागत किया। उन्होंने अल्पायु में, जब वे बालक ही थे,

इस संसार को त्याग दिया था, यद्यपि उन्होंने अपने पिता का सिंहासन प्राप्त कर लिया था और उनके अपने कई पुत्र भी थे। चूँकि उन्हें इस संसार को छोड़ना था, इसलिए मृत्यु उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। किन्तु उन्होंने मृत्यु की परवाह नहीं की और वे उसी शरीर सहित एक आध्यात्मिक विमान पर आरूढ़ होकर उन महर्षि नारद की संगति के कारण सीधे विष्णुलोक पहुँचे जिन्होंने उन्हें भगवान् की लीलाएँ सुनाई थीं।

अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ।  
ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

अथ—अब; अत्र—इस विषय में; अपि—भी; इतिहासः—इतिहास; अयम्—यह; श्रुतः—सुना हुआ; मे—मेरे द्वारा; वर्णितः—वर्णित; पुरा—वर्षों बीते; ब्रह्मणा—ब्रह्मा द्वारा; देव-देवेन—देवताओं में अग्रणी; देवानाम्—देवताओं द्वारा; अनुपृच्छताम्—पूछने पर।

वराह रूप भगवान् तथा हिरण्याक्ष असुर के मध्य युद्ध का यह इतिहास मैंने बहुत वर्षों पूर्व तब सुना था जब यह देवताओं के अग्रणी ब्रह्मा द्वारा अन्य देवताओं के पूछे जाने पर वर्णन किया गया था।

दितिर्दाक्षायणी क्षत्तमारीचं कश्यपं पतिम् ।  
अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

दितिः—दिति; दाक्षायणी—दक्ष कन्या; क्षत्तः—हे विदुर; मारीचम्—मरीचि का पुत्र; कश्यपम्—कश्यप से; पतिम्—अपने पति; अपत्य-कामा—सन्तान की इच्छुक; चकमे—इच्छा की; सन्ध्यायाम्—सायंकाल; हृत्-शय—यौन इच्छा से; अर्दिता—पीड़ित।

दक्ष-कन्या दिति ने कामेच्छा से पीड़ित होकर संध्या के समय अपने पति मरीचि पुत्र कश्यप से सन्तान उत्पन्न करने के उद्देश्य से संभोग करने के लिए प्रार्थना की।

इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ।  
निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यगारे समाहितम् ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

इष्ट्वा—पूजा करके; अग्नि—अग्नि; जिह्वम्—जीभ को; पयसा—आहुति से; पुरुषम्—परम पुरुष को; यजुषाम्—समस्त यज्ञों के; पतिम्—स्वामी; निम्लोचति—अस्त होते हुए; अर्क—सूर्य; आसीनम्—बैठे हुए; अग्नि-अगारे—यज्ञशाला में; समाहितम्—पूर्णतया समाधि में।

सूर्य अस्त हो रहा था और मुनि भगवान् विष्णु को, जिनकी जीभ यज्ञ की अग्नि है, आहुति देने के बाद समाधि में आसीन थे।

**तात्पर्य :** अग्नि को भगवान् विष्णु की जीभ माना जाता है और अग्नि में अन्न तथा घी की जो आहुतियाँ डाली जाती हैं, वे उनके द्वारा स्वीकार की जाती हैं। यह उन सभी यज्ञों का नियम है जिनके स्वामी भगवान् विष्णु हैं। दूसरे शब्दों में, भगवान् विष्णु की तुष्टि में सारे देवताओं तथा अन्य जीवों की तुष्टि सम्मिलित रहती है।

दितिरुवाच

एष मां त्वत्कृते विद्वन्काम आत्तशरासनः ।

दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥ १० ॥

**शब्दार्थ**

दितिः उवाच—सुन्दरी दिति ने कहा; एषः—ये सब; माम्—मुझको; त्वत्-कृते—आपके लिए; विद्वन्—हे विद्वान्; कामः—कामदेव; आत्त-शरासनः—अपने तीर लेकर; दुनोति—पीड़ित करता है; दीनाम्—मुझे दीना को; विक्रम्य—आक्रमण करके; रम्भाम्—केले के वृक्ष पर; इव—सदृश; मतम्-गजः—उन्मत्त हाथी।

उस स्थान पर सुन्दरी दिति ने अपनी इच्छा व्यक्त की : हे विद्वान्, कामदेव अपने तीर लेकर मुझे बलपूर्वक उसी तरह सता रहा है, जिस तरह उन्मत्त हाथी एक केले के वृक्ष को झकझोरता है।

**तात्पर्य :** अपने पति को समाधिस्थ देखकर सुन्दरी दिति ने जोर जोर से बोलना शुरु किया। उसने अपने शारीरिक हावभाव से उन्हें आकृष्ट करने का प्रयास नहीं किया। उसने खुलकर कहा कि उसके पति की उपस्थिति के कारण उसका सारा शरीर कामेच्छा से उसी तरह पीड़ित हो रहा है, जिस तरह उन्मत्त हाथी द्वारा केले का वृक्ष झकझोरा जाता है। यद्यपि समाधि में लीन पति को चलायमान करना उसे स्वाभाविक नहीं लगा, किन्तु वह अपनी प्रबल काम-क्षुधा को रोक नहीं पाई। उसकी कामेच्छा उन्मत्त हाथी के समान थी, अतएव उसके पति का यह पहला कर्तव्य था कि उसकी इच्छा पूरी करके उसे सभी तरह का संरक्षण प्रदान करे।

तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ।

प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्षामनुग्रहम् ॥ ११ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—इसलिए; भवान्—आप; दह्यमानायाम्—सताई जा रही; स-पत्नीनाम्—सौतों की; समृद्धिभिः—समृद्धि द्वारा; प्रजा-वतीनाम्—सन्तान वालियों की; भद्रम्—समस्त समृद्धि; ते—तुमको; मयि—मुझको; आयुङ्गाम्—सभी तरह से, मुझपर करें; अनुग्रहम्—कृपा।

अतएव आपको मुझ पर पूर्ण दया दिखाते हुए मेरे प्रति कृपालु होना चाहिए। मुझे पुत्र प्राप्त करने की चाह है और मैं अपनी सौतों का ऐश्वर्य देखकर अत्यधिक व्यथित हूँ। इस कृत्य को करने से आप सुखी हो सकेंगे।

**तात्पर्य :** भगवद्गीता में सन्तानोत्पत्ति के लिए संभोग को धर्मोचित बताया गया है। किन्तु केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए कामोन्मुख होना उचित नहीं है। संभोग के लिए अपने पति से दिति की याचना में ऐसा कुछ नहीं था कि वह कामेच्छा से पीड़ित थी, अपितु वह पुत्र चाहती थी। चूँकि उसके कोई पुत्र न था इसलिए वह स्वयं को अपनी सौतों की अपेक्षा हेय समझ रही थी। अतः कश्यप से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी प्रामाणिक पत्नी को तुष्ट करें।

भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ।

पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

भर्तरि—पति द्वारा; आप्त-उरुमानानाम्—प्रेयसियों का; लोकान्—संसार में; आविशते—फैलता है; यशः—यश; पतिः—पति; भवत्-विधः—आपकी तरह; यासाम्—जिसकी; प्रजया—सन्तानों द्वारा; ननु—निश्चय ही; जायते—विस्तार करता है।

एक स्त्री अपने पति के आशीर्वाद से संसार में आदर पाती है और सन्तानें होने से आप जैसा पति प्रसिद्धि पाएगा, क्योंकि आप जीवों के विस्तार के निमित्त ही हैं।

**तात्पर्य :** ऋषभदेव के अनुसार किसी को तब तक पिता या माता नहीं बनना चाहिए जब तक वह विश्वस्त न हो ले कि वह जिन सन्तानों को उत्पन्न करेगा उन्हें वह जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्ति दिला सकेगा। मानव जीवन ही उस भौतिक घेरे से बाहर निकलने का एकमात्र अवसर है, जो जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोग के कष्टों से पूरित है। हर व्यक्ति को अपने मनुष्य जीवन का लाभ उठाने का अवसर मिलना चाहिए और कश्यप जैसे पिता से आशा की जाती है कि मोक्ष के प्रयोजन से वे अच्छी सन्तानें उत्पन्न करें।

पुरा पिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः ।

कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥ १३ ॥

**शब्दार्थ**

पुरा—बहुत काल पूर्व; पिता—पिता; नः—हमारा; भगवान्—अत्यन्त ऐश्वर्यवान्; दक्षः—दक्ष; दुहितृ-वत्सलः—अपनी पुत्रियों के प्रति स्नेहिल; कम्—किसको; वृणीत—तुम स्वीकार करना चाहते हो; वरम्—अपना पति; वत्साः—हे मेरी सन्तानो; इति—इस प्रकार; अपृच्छत—पूछा; नः—हमसे; पृथक्—अलग अलग।

बहुत काल पूर्व अत्यन्त ऐश्वर्यवान हमारे पिता दक्ष ने, जो अपनी पुत्रियों के प्रति अत्यन्त वत्सल थे, हममें से हर एक को अलग अलग से पूछा कि तुम किसे अपने पति के रूप में चुनना चाहोगी।

**तात्पर्य :** इस श्लोक से प्रतीत होता है कि पिता द्वारा पति के स्वतंत्र चुनाव की तो अनुमति पुत्री को दी जाती थी, किन्तु स्वच्छन्द संगति के द्वारा नहीं। पुत्रियों को अलग अलग से कहा गया कि वे ऐसे पति का चुनाव करें जो अपने कार्यों तथा व्यक्तित्व के लिए विख्यात हो। अन्तिम चुनाव पिता की रुचि पर निर्भर करता था।

स विदित्वात्मजानां नो भावं सन्तानभावनः ।

त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥ १४ ॥

**शब्दार्थ**

सः—दक्ष; विदित्वा—समझ करके; आत्म-जानाम्—अपनी पुत्रियों के; नः—हमारा; भावम्—संकेत; सन्तान—सन्तानों का; भावनः—हितैषी; त्रयोदश—तेरह; अददात्—प्रदान किया; तासाम्—उन सबों का; याः—जो हैं; ते—तुम्हारे; शीलम्—आचरण; अनुव्रताः—सभी आज्ञाकारिणी।

हमारे शुभाकांक्षी पिता दक्ष ने हमारे मनोभावों को जानकर अपनी तेरहों कन्याएँ आपको समर्पित कर दीं और तबसे हम सभी आपकी आज्ञाकारिणी रही हैं।

**तात्पर्य :** सामान्यतया कन्याएँ अपने पिता के समक्ष अपना मत व्यक्त करने में सकुचाती थीं, किन्तु पिता पुत्रियों के मनोभावों को अन्य किसी के माध्यम से यथा दादी के माध्यम से जिसके साथ पौत्रियों की सीधी पहुँच होती थी, स्वीकार कर लेता था। राजा दक्ष ने अपनी पुत्रियों का मत जाना और इस तरह तेरहों को कश्यप को प्रदान कर दिया। दिति की हर बहिन बच्चों की माता थी। अतएव वह सन्तानहीन क्यों बनी रहे जबकि वह उसी पति के प्रति समान रूप से आज्ञाकारिणी थी?

अथ मे कुरु कल्याणं कामं कमललोचन ।

आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥ १५ ॥

**शब्दार्थ**

अथ—इसलिए; मे—मेरा; कुरु—कीजिये; कल्याणम्—कल्याण; कामम्—इच्छा; कमल-लोचन—हे कमल सदृश नेत्र वाले; आर्त—पीड़ित; उपसर्पणम्—निकट आना; भूमन्—हे महान्; अमोघम्—जो विफल न हो; हि—निश्चय ही; महीयसि—महापुरुष के प्रति।

हे कमललोचन, कृपया मेरी इच्छा पूरी करके मुझे आशीर्वाद दें। जब कोई त्रस्त होकर किसी महापुरुष के पास पहुँचता है, तो उसकी याचना कभी भी व्यर्थ नहीं होनी चाहिए।

**तात्पर्य :** दिति अच्छी तरह जानती थी कि असामयिक स्थिति के कारण उसकी विनती अस्वीकृत हो सकती है, किन्तु उसने याचना की कि जब आपातकाल हो या त्रासपूर्ण स्थिति आए तो काल या परिस्थिति पर विचार नहीं किया जाता।

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ।

प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; ताम्—उस; वीर—हे वीर; मारीचः—मरीचि पुत्र ( कश्यप ); कृपणाम्—निर्धन को; बहु-भाषिणीम्—अत्यधिक बातूनी को; प्रत्याह—उत्तर दिया; अनुनयन्—शान्त करते हुए; वाचा—शब्दों से; प्रवृद्ध—अत्यधिक उत्तेजित; अनङ्ग—कामवासना; कश्मलाम्—दूषित।

हे वीर ( विदुर ), इस तरह कामवासना के कल्मष से ग्रस्त, और इसलिए असहाय एवं बड़बड़ाती हुई दिति को मरीचिपुत्र ने समुचित शब्दों से शान्त किया।

**तात्पर्य :** जब कोई पुरुष या स्त्री कामवासना से ग्रस्त होता है, तो इसे पापपूर्ण कल्मष कहा जाता है। कश्यप अपने आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न थे तो भी उनमें इतनी शक्ति न थी कि वे अपनी पत्नी को मना कर सकते जो इस तरह पीड़ित थी। वे कठोर शब्दों में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए इनकार कर सकते थे, किन्तु वे विदुर की तरह आध्यात्मिक रूप से बलवान् नहीं थे। विदुर को यहाँ वीर कहकर सम्बोधित किया गया है, क्योंकि भगवद्भक्त की अपेक्षा आत्मसंयम में कोई भी अधिक बलवान नहीं होता। ऐसा प्रतीत होता है कि कश्यप पहले से अपनी पत्नी के साथ सम्भोग-आनन्द के लिए उन्मुख थे और चूँकि वे दृढ़ व्यक्ति नहीं थे, अतएव उन्होंने केवल सान्त्वनाप्रद शब्दों से उसे विरत करने का प्रयास किया।

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ।

तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ



एषः—यह; ते—तुम्हारी विनती; अहम्—मैं; विधास्यामि—सम्पन्न करूँगा; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; भीरु—हे डरी हुई; यत्—जो; इच्छसि—तुम चाह रही हो; तस्याः—उसकी; कामम्—इच्छाएँ; न—नहीं; कः—कौन; कुर्यात्—करेगा; सिद्धिः—मुक्ति की सिद्धि; त्रैवर्गिकी—तीन; यतः—जिससे।

हे भीरु, तुम्हें जो भी इच्छा प्रिय हो उसे मैं तुरन्त तृप्त करूँगा, क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त मुक्ति की तीन सिद्धियों का स्रोत और कौन है?

तात्पर्य : मुक्ति की तीन सिद्धियाँ हैं—धर्म, अर्थ तथा काम। बद्धात्मा के लिए स्त्री को मुक्ति का स्रोत माना जाता है, क्योंकि वह अपने पति की चरम मुक्ति के लिए उसकी सेवा करती है। बद्ध भौतिक जगत इन्द्रियतृप्ति पर आधारित है और यदि सौभाग्यवश किसी को अच्छी पत्नी मिल जाती है, तो उसे सभी प्रकार से अपनी पत्नी की सहायता प्राप्त होती है। यदि वह अपने बद्धजीवन में विचलित होता रहता है, तो वह भौतिक कल्मष में अधिकाधिक फँसता जाता है। एक आज्ञाकारिणी पत्नी से उम्मीद की जाती है कि वह अपने पति की समस्त भौतिक इच्छाओं को पूरा करने में सहयोग करे जिससे वह सारे सुख जुटा सके और जीवनसिद्धि के लिए आध्यात्मिक कार्य सम्पन्न कर सके। किन्तु यदि पति आध्यात्मिक उन्नति में प्रगतिशील है, तो उसकी पत्नी निश्चय ही उसके कार्यों में हाथ बँटाती है और तब पति-पत्नी दोनों ही आध्यात्मिक सिद्धि से लाभ उठाते हैं। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि बालिकाओं तथा बालकों को आध्यात्मिक कर्तव्य करने के लिए प्रशिक्षित किया जाय जिससे सहयोग की आवश्यकता उपस्थित होने पर दोनों लाभान्वित हो सकें। बालक का प्रशिक्षण ब्रह्मचर्य है और बालिका का कौमार्य। आज्ञाकारिणी पत्नी तथा अध्यात्मशिक्षित ब्रह्मचारी मानव उद्देश्य की प्रगति के लिए उत्तम संयोग है।

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।  
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

सर्व—समस्त; आश्रमान्—सामाजिक व्यवस्थाओं, आश्रमों को; उपादाय—पूर्ण करके; स्व—अपने; आश्रमेण—आश्रमों के द्वारा; कलत्र-वान्—अपनी पत्नी के साथ रहने वाला व्यक्ति; व्यसन-अर्णवम्—संसार रूपी भयावह सागर; अत्येति—पार कर सकता है; जल-यानैः—समुद्री जहाजों द्वारा; यथा—जिस तरह; अर्णवम्—समुद्र को।

जिस तरह जहाजों के द्वारा समुद्र को पार किया जा सकता है उसी तरह मनुष्य पत्नी के साथ रहते हुए भवसागर की भयावह स्थिति से पार हो सकता है।

तात्पर्य : संसार से मोक्ष के प्रयास में सहयोग करने के लिए चार सामाजिक व्यवस्थाएँ अर्थात्

आश्रम हैं। ये हैं—ब्रह्मचर्य या पवित्र छात्र जीवन, पत्नी के साथ गृहस्थ जीवन, वानप्रस्थ तथा संन्यास—सफल प्रगति के लिए ये सभी उस गृहस्थ पर निर्भर करते हैं, जो अपनी पत्नी के साथ रहता है। यह सहयोग जीवन की चार सामाजिक व्यवस्थाओं तथा चार आध्यात्मिक व्यवस्थाओं के सुचारु रूप से कार्य करते रहने के लिए अति आवश्यक है। यह वैदिक वर्णाश्रम प्रणाली सामान्यतया जाति प्रथा कहलाती है। अपनी पत्नी के साथ रहने वाले पुरुष की सबसे बड़ी जिम्मेदारी होती है अन्य आश्रमों के सदस्यों—*ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों तथा संन्यासियों*—के भरणपोषण की। गृहस्थों को छोड़ कर अन्य सबों से आशा की जाती है कि वे जीवन की आध्यात्मिक प्रगति में लगे रहें, अतएव *ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी* को जीविका कमाने के लिए बहुत ही कम समय रहता है। इसलिए वे गृहस्थों से भिक्षा एकत्र करते हैं और इस तरह से जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और आध्यात्मिक ज्ञान का अनुशीलन करते हैं। समाज के अन्य तीन वर्गों को आध्यात्मिक मूल्यों का अनुशीलन करने में सहायता करके गृहस्थ भी आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करता है। अन्ततोगत्वा समाज का हर सदस्य स्वतः आध्यात्मिक रूप से उन्नत बनता है और अविद्या के सागर को सहज ही पार कर जाता है।

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ।

यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विञ्चरः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

याम्—जिस पत्नी को; आहुः—कहा जाता है; आत्मनः—शरीर का; हि—इस प्रकार; अर्धम्—आधा; श्रेयः—कल्याण; कामस्य—सारी इच्छाओं का; मानिनि—हे आदरणीया; यस्याम्—जिसमें; स्व-धुरम्—सारे उत्तरदायित्व; अध्यस्य—सौंपकर; पुमान्—पुरुष; चरति—भ्रमण करता है; विञ्चरः—निश्चिन्त।

हे आदरणीया, पत्नी इतनी सहायताप्रद होती है कि वह मनुष्य के शरीर की अर्धांगिनी कहलाती है, क्योंकि वह समस्त शुभ कार्यों में हाथ बँटाती है। पुरुष अपनी पत्नी पर जिम्मेदारियों का सारा भार डालकर निश्चिन्त होकर विचरण कर सकता है।

तात्पर्य : वैदिक आदेशानुसार पत्नी को पुरुष के शरीर की अर्धांगिनी माना जाता है, क्योंकि वह पति के आधे कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी मानी जाती है। पारिवारिक पुरुष पर पाँच प्रकार के यज्ञ, जिन्हें *पञ्चयज्ञ* कहते हैं, सम्पन्न करने का भार रहता है, जिससे उसे सभी प्रकार के

अनिवार्य पाप-कर्मों के फलों से छुटकारा मिल सके जो उसकी अपनी दिनचर्या के दौरान हो जाते हैं। जब मनुष्य गुणात्मक रीति से कुत्ते-बिल्लियों की तरह बन जाता है, तो वह आध्यात्मिक मूल्यों का अनुशीलन करने के अपने कर्तव्यों को भूल जाता है और तब वह अपनी पत्नी को इन्द्रियतृप्ति का साधन मान बैठता है। जब पत्नी को इन्द्रियतृप्ति का साधन माना जाता है, तो उसके पीछे व्यक्तिगत सौन्दर्य मुख्य उपादान रहता है और जैसे ही व्यक्तिगत इन्द्रियतृप्ति में कोई अवरोध आता है, तो सम्बन्धों में व्यवधान या तलाक हो जाता है। किन्तु जब पति-पत्नी पारस्परिक सहयोग द्वारा आध्यात्मिक प्रगति को लक्ष्य बनाते हैं, तो वैयक्तिक सौन्दर्य या तथाकथित प्रेम में व्यवधान पर ध्यान नहीं दिया जाता। भौतिक जगत में प्रेम का प्रश्न ही नहीं उठता। विवाह तो वास्तव में एक कर्तव्य है, जिसे आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रामाणिक शास्त्रों के निर्देशानुसार पारस्परिक सहयोग में सम्पन्न किया जाता है। अतएव कुत्तों तथा बिल्लियों के जीवन से बचने के लिए विवाह आवश्यक है, क्योंकि कुत्ते-बिल्ली आध्यात्मिक प्रबुद्धता के लिए नहीं हैं।

यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ।

वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥ २० ॥

#### शब्दार्थ

याम्—जिसको; आश्रित्य—आश्रय बनाकर; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अरातीन्—शत्रुगण; दुर्जयान्—जीत पाना कठिन; इतर—गृहस्थों के अतिरिक्त; आश्रमैः—आश्रमों द्वारा; वयम्—हम; जयेम—जीत सकते हैं; हेलाभिः—आसानी से; दस्यून्—आक्रमणकारी लुटेरों को; दुर्ग-पतिः—किले का सेनानायक; यथा—जिस तरह।

जिस तरह किले का सेनापति आक्रमणकारी लुटेरों को बहुत आसानी से जीत लेता है उसी तरह पत्नी का आश्रय लेकर मनुष्य उन इन्द्रियों को जीत सकता है, जो अन्य आश्रमों में अजेय होती हैं।

तात्पर्य : मानव-समाज के चार आश्रमों—*ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ* तथा *संन्यास* आश्रमों—में से गृहस्थ सुरक्षित है। शारीरिक इन्द्रियाँ शरीर रूपी किले की लुटेरी मानी जाती हैं। पत्नी को किले का सेनापति माना जाता है, अतएव जब कभी शरीर पर इन्द्रियों द्वारा आक्रमण किया जाता है, तो पत्नी ही शरीर को क्षत-विक्षत होने से बचाती है। यौन की भूख हर एक के लिए अपरिहार्य है, किन्तु जिसके पास स्थायी पत्नी होती है, वह इन्द्रिय-शत्रुओं के आक्रमण से बचा लिया जाता है। जिस व्यक्ति के

उत्तम पत्नी होती है, वह कुमारिकाओं को भ्रष्ट करके समाज में उत्पात नहीं मचाता। स्थायी पत्नी के बिना मनुष्य परले सिरे का व्यभिचारी बन जाता है और समाज के लिए अभिशाप होता है जब तक कि वह प्रशिक्षित ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ या संन्यासी न हो। जब तक दक्ष गुरु द्वारा ब्रह्मचारी का कठोर तथा नियमित प्रशिक्षण नहीं होगा और जब तक छात्र आज्ञाकारी नहीं होगा तब तक निश्चय ही तथाकथित ब्रह्मचारी यौन के आक्रमण का शिकार बनता रहेगा। पतन के अनेकानेक उदाहरण हैं—यहाँ तक कि विश्वामित्र जैसे महान् योगी का भी पतन हुआ। किन्तु गृहस्थ अपनी आज्ञाकारिणी पत्नी के कारण सुरक्षित बना रहता है। यौन जीवन भवबन्धन का कारण है इसीलिए इन तीन आश्रमों में इसका निषेध है और एकमात्र गृहस्थ आश्रम में इसकी अनुमति दी जाती है। गृहस्थ उत्तमकोटि के *ब्रह्मचारियों*, *वानप्रस्थों* तथा *संन्यासियों* को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है।

न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ।

अप्यायुषा वा कात्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

न—कभी नहीं; वयम्—हम; प्रभवः—समर्थ हैं; ताम्—उस; त्वाम्—तुमको; अनुकर्तुम्—वही करने के लिए; गृह-ईश्वरि—हे घर की रानी; अपि—के बावजूद; आयुषा—आयु के द्वारा; वा—अथवा ( अगले जन्म में ); कात्स्न्येन—सम्पूर्ण; ये—जो; च—भी; अन्ये—अन्य; गुण-गृध्नवः—गुणों को पहचानने वाले।

हे घर की रानी, हम न तो तुम्हारी तरह कार्य करने में सक्षम हैं, न ही तुमने जो कुछ किया है उससे उद्धरण हो सकते हैं, चाहे हम अपने जीवन भर या मृत्यु के बाद भी कार्य करते रहें। तुमसे उद्धरण हो पाना उन लोगों के लिए भी असम्भव है, जो निजी गुणों के प्रशंसक होते हैं।

तात्पर्य : पति द्वारा अपनी पत्नी का अत्यधिक गुण-गान संकेत करता है कि वह स्त्रीवश्य है या मजाक कर रहा है। कश्यप का आशय था कि पत्नियों के साथ रहने वाले गृहस्थ इन्द्रियभोग का स्वर्गिक आशीर्वाद भोगते हैं और साथ ही उनके पतन का भी कोई भय नहीं रहता। संन्यासी के पत्नी नहीं होती, अतः कामेच्छा से वह अन्य स्त्री को या अन्य की पत्नी को ढूँढने के लिए इच्छुक हो सकता है और इस तरह वह नरक जा सकता है। दूसरे शब्दों में, तथाकथित संन्यासी, जिसने घर तथा पत्नी को छोड़ दिया हो, नरक जाता है यदि वह जाने या अनजाने पुनः मैथुन-आनन्द की चाह करता है। इस दृष्टि से गृहस्थ सुरक्षित हैं। अतएव पतिवर्ग इस जीवन में या अगले जीवन में भी पत्नियों के ऋण से

उत्कृष्ट नहीं हो सकता। यदि वे जीवनभर इसे चुकता करते रहें तो भी यह सम्भावना नहीं। किन्तु सभी पति अपनी पत्नियों के सद्गुणों की सराहना नहीं कर पाते, किन्तु यदि कोई इन गुणों की सराहना करने में समर्थ हो भी जाए तो भी पत्नी के ऋण से उत्कृष्ट हो पाना सम्भव नहीं है। पति द्वारा अपनी पत्नी की ऐसी असाधारण प्रशंसा निश्चय ही परिहास की मुद्रा में है।

अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् ।

यथा मां नातिरोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

अथ अपि—यद्यपि ( यह सम्भव नहीं है ); कामम्—यह कामेच्छा; एतम्—जैसी है; ते—तुम्हारा; प्रजात्यै—सन्तानों के लिए; करवाणि—मुझे करने दें; अलम्—बिना विलम्ब किये; यथा—जिस तरह; माम्—मुझको; न—नहीं; अतिरोचन्ति—निन्दा करें; मुहूर्तम्—कुछ क्षण; प्रतिपालय—प्रतीक्षा करो।

यद्यपि मैं तुम्हारे ऋण से उत्कृष्ट नहीं हो सकता, किन्तु मैं सन्तान उत्पन्न करने के लिए तुम्हारी कामेच्छा को तुरन्त तुष्ट करूँगा। किन्तु तुम केवल कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करो जिससे अन्य लोग मेरी भर्त्सना न कर सकें।

तात्पर्य : भले ही स्त्रीवश्य पति अपनी पत्नी से प्राप्त होने वाले सारे लाभों का ऋण चुका पाने में समर्थ न हो, किन्तु जहाँ तक कामेच्छा की पूर्ति द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की बात है, किसी भी पति के लिए यह तनिक भी कठिन नहीं है जब तक कि वह नितान्त नपुंसक न हो। सामान्य परिस्थितियों में पति के लिए यह बहुत ही आसान कार्य है। अत्यन्त उत्सुक होने पर भी कश्यप ने अपनी पत्नी से कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा जिससे अन्य लोग उसकी निन्दा न कर सकें। वे अपनी स्थिति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं।

एषा घोरतमा वेला घोरानां घोरदर्शना ।

चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥ २३ ॥

### शब्दार्थ

एषा—यह समय; घोर-तमा—सर्वाधिक भयावनी; वेला—घड़ी; घोरानाम्—भयावने का; घोर-दर्शना—भयावनी लगनेवाली; चरन्ति—विचरण करते हैं; यस्याम्—जिसमें; भूतानि—भूत-प्रेत; भूत-ईश—भूतों के स्वामी; अनुचराणि—नित्यसंगी; ह—निस्सन्देह।

यह विशिष्ट वेला अतीव अशुभ है, क्योंकि इस वेला में भयावने दिखने वाले भूत तथा भूतों के स्वामी के नित्य संगी दृष्टिगोचर होते हैं।

**तात्पर्य :** कश्यप अपनी पत्नी दिति से पहले ही क्षण भर के लिए प्रतीक्षा करने के लिए कह चुके थे और अब वे उसे आगाह करते हैं कि यदि इस विशेष वेला पर ध्यान नहीं दिया गया तो इस वेला में अपने स्वामी रुद्र के साथ इधर-उधर विचरण करने वाले भूत-प्रेत अवश्य दण्ड देंगे।

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान्भूतभावनः ।  
परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

एतस्याम्—इस वेला में; साध्वि—हे सती; सन्ध्यायाम्—दिन तथा रात के सन्धिकाल में ( संध्या समय ); भगवान्—भगवान्;  
भूत-भावनः—भूतों के हितैषी; परीतः—घिरे हुए; भूत-पर्षद्भिः—भूतों के संगियों से; वृषेण—बैल की पीठ पर; अटति—  
भ्रमण करता है; भूत-राट्—भूतों का राजा।

इस वेला में भूतों के राजा शिवजी, अपने वाहन बैल की पीठ पर बैठकर उन भूतों के साथ विचरण करते हैं, जो अपने कल्याण के लिए उनका अनुगमन करते हैं।

**तात्पर्य :** शिवजी या रुद्र भूतों के राजा हैं। भूतगण शिवजी की इसलिए पूजा करते हैं कि धीरे धीरे वे आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर अग्रसर हो सकें। मायावादी दार्शनिक अधिकांशतया शिवजी के पूजक होते हैं और श्रीपाद शंकराचार्य को शिवजी का अवतार मान लिया जाता है, जो मायावादी दार्शनिकों को ईशविहीनता (नास्तिकता) का उपदेश देते हैं। भूतों के भौतिक शरीर नहीं होते, क्योंकि वे आत्महत्या जैसा घोर पापकर्म किये रहते हैं। मानव समाज में भूतवत् पात्रों का अन्तिम गन्तव्य यह है कि वे भौतिक या आध्यात्मिक आत्महत्या की शरण लें। भौतिक आत्महत्या से भौतिक शरीर की और आध्यात्मिक आत्महत्या से व्यष्टि स्वरूप की हानि होती है। मायावादी दार्शनिक अपने व्यष्टित्व को खोकर निर्विशेष आध्यात्मिक *ब्रह्मज्योति* के अस्तित्व में लीन होना चाहते हैं। शिवजी भूतों पर अत्यधिक कृपालु होने के कारण इस ताक में रहते हैं कि निन्दित होने पर भी इन भूतों को भौतिक शरीर प्राप्त हों। वे उन्हें ऐसी स्त्रियों के गर्भ में स्थापित करते हैं, जो परिस्थिति तथा काल के प्रतिबन्धों की परवाह न करके संभोगरत होती हैं। कश्यप यह बात दिति को समझा देना चाहते थे जिससे वह कुछ क्षण तक प्रतीक्षा कर सके।

श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्र  
विकीर्णविद्योतजटाकलापः ।

भस्मावगुण्टामलरुक्मदेहो

देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

श्मशान—श्मशान भूमि; चक्र—अनिल—बवंडर; धूलि—धूल; धूम्र—धुआँ; विकीर्ण—विद्योत—सौन्दर्य के ऊपर पुता हुआ; जटा—कलापः—जटाओं के गुच्छे; भस्म—राख; अवगुण्ठ—से ढका; अमल—निष्कलंक; रुक्म—लाल; देहः—शरीर; देवः—देवता; त्रिभिः—तीन आँखों वाला; पश्यति—देखता है; देवरः—पति का छोटा भाई; ते—तुम्हारा।

शिवजी का शरीर लालाभ है और वह निष्कलुष है, किन्तु वे उस पर राख पोते रहते हैं। उनकी जटा श्मशान भूमि की बवंडर की धूल से धूसरित रहती है। वे तुम्हारे पति के छोटे भाई हैं—और वे अपने तीन नेत्रों से देखते हैं।

तात्पर्य : शिवजी न तो सामान्य जीव हैं न ही वे विष्णु या पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कोटि में आते हैं। वे ब्रह्मा समेत किसी भी जीव से अधिक शक्तिमान हैं फिर भी वे विष्णु के समान-स्तर पर नहीं हैं। चूँकि शिव भगवान् विष्णु जैसे ही हैं, अतएव वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य देख सकते हैं। उनका एक नेत्र सूर्य के समान है, दूसरा चन्द्रमा के समान तथा उनका तीसरा नेत्र जो उनकी भौहों के बीच में स्थित है, अग्नि तुल्य है। वे अपने बीचवाले नेत्र से अग्नि उत्पन्न कर सकते हैं और वे ब्रह्मा समेत किसी भी जीव को विनष्ट कर सकते हैं फिर भी वे न तो किसी अच्छे घर में तड़क भड़क से रहते हैं, न ही उनके कोई भौतिक सम्पत्ति है यद्यपि वे भौतिक जगत के स्वामी हैं। वे अधिकांशतया श्मशान में रहते हैं जहाँ शव जलाये जाते हैं और श्मशान के बवंडर की धूल ही उनका वस्त्र है। वे भौतिक कल्मष से रंजित नहीं होते। कश्यप ने उन्हें अपना छोटा भाई माना है, क्योंकि दिति (कश्यप पत्नी) की सबसे छोटी बहिन शिवजी को ब्याही थी। बहिन का पति उसका भाई माना जाता है। उस समाजिक सम्बन्ध से शिवजी कश्यप के छोटे भाई ठहरे। कश्यप ने अपनी पत्नी को आगाह किया कि क्योंकि शिवजी उनको संभोगरत देख लेंगे इसलिए यह वेला उपयुक्त नहीं है। हो सकता है कि दिति तर्क करती कि वे किसी एकान्त स्थान में संभोग करेंगे, किन्तु कश्यप ने उसे स्मरण कराया कि शिवजी के तीन नेत्र हैं, जो सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि कहलाते हैं और कोई भी उनकी दृष्टि से बच नहीं सकता जिस तरह विष्णु की दृष्टि से भी कोई बच नहीं सकता। यद्यपि अपराधी को पुलिस देख लेती है, किन्तु कभी कभी उसे तुरन्त दण्ड नहीं मिलता। पुलिस उसे दण्ड दिलाने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करती है। संभोग के लिए निषिद्ध वेला शिवजी द्वारा देख ली जायेगी और दिति भूत जैसे चरित्र वाले

या ईशविहीन निर्विशेषवादी शिशु को जन्म देकर समुचित दण्ड प्राप्त करेगी। कश्यप ने इसे पहले ही देख लिया था इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी दिति को आगाह किया।

न यस्य लोके स्वजनः परो वा

नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्हः ।

वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धा-

माशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥ २६ ॥

### शब्दार्थ

न—कभी नहीं; यस्य—जिसका; लोके—संसार में; स्व-जनः—अपना; परः—पराया; वा—न तो; न—न ही; अति—अधिक; आदृतः—अनुकूल; न—नहीं; उत—अथवा; कश्चित्—कोई; विगर्हः—अपराधी; वयम्—हम; व्रतैः—व्रतों के द्वारा; यत्—जिसके; चरण—पाँव; अपविद्धाम्—तिरस्कृत; आशास्महे—सादर पूजा करते हैं; अजाम्—महा-प्रसाद; बत—निश्चय ही; भुक्त-भोगाम्—उच्छिष्ट भोजन।

शिवजी किसी को भी अपना सम्बन्धी नहीं मानते फिर भी ऐसा कोई भी नहीं है, जो उनसे सम्बन्धित न हो। वे किसी को न तो अति अनुकूल, न ही निन्दनीय मानते हैं। हम उनके उच्छिष्ट भोजन की सादर पूजा करते हैं और वे जिसका तिरस्कार करते हैं उसको हम शीश झुका कर स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य : कश्यप ने अपनी पत्नी को बतलाया कि चूँकि शिवजी उनके सादर लगते हैं इसलिए उसे उनके प्रति अपराध करने के लिए प्रोत्साहित नहीं होना चाहिए। कश्यप ने उसे आगाह किया कि वस्तुतः शिवजी न तो किसी से सम्बन्धित हैं न ही कोई उनका शत्रु है। चूँकि वे ब्रह्माण्ड के मामलों के तीन नियंत्रकों में से एक हैं, अतएव वे हर एक पर समदृष्टि रखते हैं। उनकी महानता अतुलनीय है, क्योंकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के महान् भक्त हैं। कहा जाता है कि भगवान् के समस्त भक्तों में शिवजी महानतम हैं। इसीलिए उनके द्वारा छोड़ा गया भोज्य पदार्थ अन्य भक्तों द्वारा महाप्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है। भगवान् कृष्ण को अर्पित भोजन का उच्छिष्ट प्रसाद कहलाता है, किन्तु जब वही प्रसाद शिवजी जैसे महान् भक्त द्वारा खाया जाता है, तो वह महाप्रसाद कहलाता है। शिवजी इतने महान् हैं कि वे उस भौतिक सम्पत्ति की परवाह नहीं करते जिसके लिए हम सभी उत्सुक रहते हैं। पार्वती जी, जो कि साक्षात् शक्तिमयी भौतिक प्रकृति हैं, उनकी पत्नी के रूप में उनके पूर्ण नियंत्रण में हैं; फिर भी वे उनका उपयोग रिहायशी घर बनाने तक के लिए नहीं करते। वे बिना आश्रय के रहना पसन्द करते हैं और उनकी महान् पत्नी भी उनके साथ विनीत भाव से रहने के लिए राजी रहती है।



सामान्य जन शिवजी की पत्नी दुर्गादेवी की पूजा भौतिक सम्पन्नता के लिए करते हैं, किन्तु शिवजी बिना किसी भौतिक इच्छा के उन्हें अपनी सेवा में लगाये रहते हैं। वे अपनी महान् पत्नी को यही उपदेश देते हैं कि सभी प्रकार की पूजाओं में विष्णुपूजा सर्वोपरि है और उससे भी बढ़कर है महान् भक्त की या विष्णु से सम्बन्धित किसी भी वस्तु की पूजा।

यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो

गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ।

निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं

पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अनवद्य—अनिष्ट; आचरितम्—चरित्र; मनीषिणः—बड़े बड़े मुनिगण; गृणन्ति—अनुगमन करते हैं; अविद्या—अज्ञान; पटलम्—पिंड; बिभित्सवः—उखाड़ फेंकने के लिए इच्छुक; निरस्त—निरस्त किया हुआ; साम्य—समता; अतिशयः—महानता; अपि—के बावजूद; यत्—क्योंकि; स्वयम्—स्वयं; पिशाच—पिशाच, शैतान; चर्याम्—कार्यकलाप; अचरत्—सम्पन्न किया; गतिः—गन्तव्य; सताम्—भगवद्भक्तों का।

यद्यपि भौतिक जगत में न तो कोई भगवान् शिव के बराबर है, न उनसे बढ़कर है और अविद्या के समूह को छिन्न-भिन्न करने के लिए उनके अनिष्ट चरित्र का महात्माओं द्वारा अनुसरण किया जाता है फिर भी वे सारे भगवद्भक्तों को मोक्ष प्रदान करने के लिए ऐसे बने रहते हैं जैसे कोई पिशाच हो।

तात्पर्य : शिवजी के असंस्कृत, पीशाचीय गुण कभी भी निन्दनीय नहीं होते, क्योंकि वे भगवान् के निष्ठावान भक्तों को सिखाते हैं कि भौतिक भोग से वैराग्य का अभ्यास कैसे किया जाय। वे महादेव कहलाते हैं और इस जगत में न तो कोई उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर। वे भगवान् विष्णु के लगभग तुल्य हैं। यद्यपि वे सदैव माया या दुर्गा के संग रहते हैं, किन्तु वे प्रकृति के तीन गुणों की प्रतिक्रिया अवस्था से ऊपर हैं। यद्यपि वे तमोगुणी पिशाचों के अधिकारी हैं, किन्तु वे ऐसी संगति से प्रभावित नहीं होते।

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः

स्वात्मत्रतस्याविदुषः समीहितम् ।

यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः

श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २८ ॥

## शब्दार्थ

हसन्ति—हँसते हैं; यस्य—जिसका; आचरितम्—कार्य; हि—निश्चय ही; दुर्भगाः—अभागे; स्व-आत्मन्—अपने में; रतस्य—संलग्न रहने वाले का; अविदुषः—न जानने वाला; समीहितम्—उसका उद्देश्य; यैः—जिसके द्वारा; वस्त्र—वस्त्र; माल्य—मालाएँ; आभरण—आभूषण; अनु—ऐसे विलासी; लेपनेः—लेप से; श्व-भोजनम्—कुत्तों का भोजन; स्व-आत्मतया—मानो स्वयं; उपलालितम्—लाड़-प्यार किया गया।

अभागे मूर्ख व्यक्ति यह न जानते हुए कि वे अपने में मस्त रहते हैं उन पर हँसते हैं। ऐसे मूर्ख व्यक्ति अपने उस शरीर को जो कुत्तों द्वारा खाये जाने योग्य है वस्त्र, आभूषण, माला तथा लेप से सजाने में लगे रहते हैं।

तात्पर्य : शिवजी कभी भी विलासी वस्त्र, माला, आभूषण या लेप स्वीकार नहीं करते। किन्तु जिन लोगों को शरीर को सजाने की लत रहती है वे उसे आत्मा के रूप में विलासपूर्वक बनाये रखते हैं, यद्यपि अन्त में वह कुत्तों का भक्ष्य बनता है। ऐसे व्यक्ति शिवजी को नहीं समझ पाते, किन्तु वे विलासपूर्ण भौतिक सुविधाओं के लिए उनके पास पहुँचते रहते हैं। शिवजी के भक्तों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग नितान्त भौतिकतावादी होता है, जो शिवजी से केवल शारीरिक सुविधाओं की याचना करता है और दूसरा वर्ग उनसे तदाकार होना चाहता है। वे अधिकांशतया निर्विशेषवादी होते हैं और शिवोऽहम् अर्थात् “मैं शिव हूँ” का उच्चारण करते हैं जिसका अर्थ है कि, “मुक्ति के बाद मैं शिवजी से तदाकार हो जाऊँगा।” दूसरे शब्दों में, सामान्यतया कर्मी तथा ज्ञानीजन शिवजी के भक्त होते हैं, किन्तु वे उनके जीवन का वास्तविक उद्देश्य अच्छी तरह नहीं समझते। कभी-कभी शिवजी के तथाकथित भक्त विषैले मादक द्रव्यों का उपयोग करके उनकी नकल करते हैं। एक बार शिवजी ने विष का सागर निगल लिया था जिससे उनका गला नीला पड़ गया था। नकली शिव-गण विषों की लत लगाकर उनका अनुगमन करना चाहते हैं और इस तरह विनष्ट हो जाते हैं। शिवजी का असली उद्देश्य आत्मा के आत्मा अर्थात् भगवान् कृष्ण की सेवा करना है। वे चाहते हैं कि सारी विलास सामग्री यथा उत्तम वस्त्र, मालाएँ, आभूषण तथा प्रसाधन वस्तुएँ एकमात्र भगवान् कृष्ण को प्रदान की जाँय, क्योंकि वे ही असली भोक्ता हैं। वे स्वयं ऐसी विलास-सामग्री को अस्वीकार कर देते हैं, क्योंकि वे तो एकमात्र कृष्ण के निमित्त होती हैं। किन्तु मूर्ख-जन शिवजी के इस मन्तव्य को न जानने के कारण या तो उन पर हँसते हैं या व्यर्थ ही उनकी नकल करने का प्रयास करते हैं।

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला  
 यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।  
 आज्ञाकरी यस्य पिशाचचर्या  
 अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ २९ ॥

### शब्दार्थ

ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा जैसे देवतागण; यत्—जिसका; कृत—कार्यकलाप; सेतु—धार्मिक अनुष्ठान; पालाः—पालने वाले; यत्—जो है; कारणम्—उद्गम; विश्वम्—ब्रह्माण्ड का; इदम्—इस; च—भी; माया—भौतिक शक्ति; आज्ञा-करी—आदेश पूरा करने वाला; यस्य—जिसका; पिशाच—शैतानवत्; चर्या—कर्म; अहो—हे प्रभु; विभूम्नः—महान् का; चरितम्—चरित्र; विडम्बनम्—केवल विडम्बना ।

ब्रह्मा जैसे देवता भी उनके द्वारा अपनाये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करते हैं । वे उस भौतिक शक्ति के नियन्ता हैं, जो भौतिक जगत का सृजन करती है । वे महान् हैं, अतएव उनके पिशाचवत् गुण मात्र विडम्बना हैं ।

तात्पर्य : शिवजी दुर्गा के पति हैं अर्थात् भौतिक शक्ति के नियन्ता हैं । दुर्गा साक्षात् भौतिक शक्ति हैं और उनके पति होने के कारण शिवजी भौतिक शक्ति के नियन्ता हैं । वे तमोगुण के अवतार भी हैं और भगवान् का प्रतिनिधित्व करने वाले तीन देवों में से एक हैं । भगवान् के प्रतिनिधि होने से शिवजी उनसे अभिन्न हैं । वे अति महान् हैं और उनके द्वारा समस्त भौतिक भोग का परित्याग इसका आदर्श उदाहरण है कि मनुष्य को किस तरह भौतिक रूप से अनासक्त रहना चाहिए । अतएव मनुष्य को उनके पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए और पदार्थ से अनासक्त रहना चाहिए । उसे गरलपान जैसे उनके असामान्य कार्यों की नकल नहीं करनी चाहिए ।

मैत्रेय उवाच

सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया ।  
 जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; सा—वह; एवम्—इस प्रकार; संविदिते—सूचित किए जाने पर भी; भर्त्रा—पति द्वारा; मन्मथ—कामदेव द्वारा; उन्मथित—विवश की गई; इन्द्रिया—इन्द्रियों के द्वारा; जग्राह—पकड़ लिया; वासः—वस्त्र; ब्रह्म-ऋषेः—उस महान् ब्राह्मण ऋषि का; वृषली—वेश्या; इव—सदृश; गत-त्रपा—लज्जारहित ।

मैत्रेय ने कहा : इस तरह दिति अपने पति द्वारा सूचित की गई, किन्तु वह संभोग-तुष्टि हेतु कामदेव द्वारा विवश कर दी गई । उसने उस महान् ब्राह्मण ऋषि का वस्त्र पकड़ लिया जिस तरह एक निर्लज्ज वेश्या करती है ।

तात्पर्य : एक विवाहित पत्नी तथा वेश्या में यही अन्तर है कि एक शास्त्रों के विधि-विधानों द्वारा

यौन जीवन में नियंत्रित रहती है, जबकि दूसरी अनियंत्रित और एकमात्र प्रबल कामवासना द्वारा संचालित होती है। यद्यपि महर्षि कश्यप अति प्रबुद्ध थे, किन्तु वे अपनी वेश्या पत्नी के शिकार हो गये। भौतिक शक्ति इतनी प्रबल होती है।

स विदित्वाथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ।  
नत्वा दिष्टाय रहसि तयाथोपविवेश हि ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

सः—उसने; विदित्वा—समझकर; अथ—तत्पश्चात्; भार्यायाः—पत्नी की; तम्—उस; निर्बन्धम्—जड़ता या दुराग्रह को; विकर्मणि—निषिद्ध कार्य में; नत्वा—नमस्कार करके; दिष्टाय—पूज्य भाग्य को; रहसि—एकान्त स्थान में; तया—उसके साथ; अथ—इस प्रकार; उपविवेश—लेट गया; हि—निश्चय ही।

अपनी पत्नी के मन्तव्य को समझकर उन्हें वह निषिद्ध कार्य करना पड़ा और तब पूज्य प्रारब्ध को नमस्कार करके वे उसके साथ एकान्त स्थान में लेट गये।

तात्पर्य : कश्यप की अपनी पत्नी के साथ बातों से ऐसा लगता है कि वे शिवजी के उपासक थे और यद्यपि वे जानते थे कि ऐसा निषिद्ध कार्य करने से शिवजी उन पर प्रसन्न नहीं होंगे, किन्तु अपनी पत्नी की इच्छा के कारण वे ऐसा करने के लिए बाध्य थे, अतएव उन्होंने प्रारब्ध को नमस्कार किया। वे जानते थे कि ऐसे असामयिक संभोग से जो सन्तान उत्पन्न होगी वह निश्चय ही अच्छी नहीं होगी, किन्तु वे अपने को बचा नहीं पाये, क्योंकि वे अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ थे। किन्तु ऐसी ही दशा में जब ठाकुर हरिदास एक वेश्या के द्वारा अर्धरात्रि में मोहित किये गये तो उन्होंने कृष्णभावनामृत में अपनी सिद्धि के कारण उस प्रलोभन से अपने को बचा लिया। एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति तथा अन्यो में यही अन्तर है। कश्यप मुनि महान् विद्वान् तथा प्रबुद्ध थे और नियमित जीवन के सारे विधि-विधान जानते थे फिर भी वे अपने को कामेच्छा के आक्रमण से बचा नहीं पाये। ठाकुर हरिदास न तो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न थे न ही स्वयं ब्राह्मण थे फिर भी कृष्णभावनाभावित होने के कारण वे अपने को ऐसे आक्रमण से बचा सके। ठाकुर हरिदास प्रतिदिन तीन लाख भगवन्नाम् का जप करते थे।

अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ।  
ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; उपस्पृश्य—जल का स्पर्श करके या जल में स्नान करके; सलिलम्—जल; प्राणान् आयम्य—समाधि का अभ्यास करके; वाक्-यतः—वाणी को नियंत्रित करते हुए; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; जजाप—मुख के भीतर जप किया; विरजम्—शुद्ध; ब्रह्म—गायत्री मंत्र; ज्योतिः—तेज; सनातनम्—नित्य।

तत्पश्चात् उस ब्राह्मण ने जल में स्नान किया और समाधि में नित्य तेज का ध्यान करते हुए तथा मुख के भीतर पवित्र गायत्री मंत्र का जप करते हुए अपनी वाणी को वश में किया।

तात्पर्य : जिस तरह शौच के बाद मनुष्य स्नान करता है उसी तरह विशेष रूप से निषिद्ध समय पर, संभोग करने के बाद मार्जन करना पड़ता है। कश्यप मुनि ने अपने मुख के भीतर गायत्री मंत्र का जाप करते हुए निर्विशेष ब्रह्मज्योति का ध्यान किया। जब वैदिक मंत्र का उच्चारण मुख के भीतर किया जाय ताकि केवल जापक ही सुन सके, तो इसे जप कहते हैं। किन्तु जब ऐसे मंत्रों का उच्चस्वर से उच्चारण किया जाता है, तो वह कीर्तन कहलाता है। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—इस वैदिक मंत्र को अपने मन में धीमे धीमे अथवा जोर जोर से उच्चरति किया जा सकता है इसलिए यह महामन्त्र कहलाता है।

कश्यप मुनि निर्विशेषवादी प्रतीत होते हैं। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, ठाकुर हरिदास से उनके चरित्र की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि एक सगुणवादी इन्द्रियनिग्रह में निर्विशेषवादी से अधिक प्रबल होता है। भगवद्गीता में इसकी व्याख्या परं दृष्टा निवर्तते से हुई है—उच्च पद पर स्थित होने पर मनुष्य निम्न कोटि की वस्तुएँ ग्रहण करना बन्द कर देता है। ऐसा माना जाता है कि स्नान करने तथा गायत्री जप करने के बाद मनुष्य शुद्ध हो जाता है, किन्तु महामन्त्र इतना शक्तिशाली होता है कि कोई इसे, किसी भी स्थिति में, चाहे धीरे धीरे जपे या जोर जोर से, वह संसार की सारी बुराइयों से बच जाता है।

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ।

उपसङ्गम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

दितिः—कश्यप-पत्नी दिति ने; तु—लेकिन; व्रीडिता—लज्जित; तेन—उस; कर्म—कार्य से; अवद्येन—दोषपूर्ण; भारत—हे भरतवंश के पुत्र; उपसङ्गम्य—पास जाकर; विप्र-ऋषिम्—ब्राह्मण ऋषि के; अधः-मुखी—अपना मुख नीचे किये; अभ्यभाषत—विनम्र होकर कहा।

हे भारत, इसके बाद दिति अपने पति के और निकट गई। उसका मुख दोषपूर्ण कृत्य के कारण झुका हुआ था। उसने इस प्रकार कहा।

**तात्पर्य :** जब कोई व्यक्ति निन्दनीय कार्य के लिए लज्जित होता है, तो वह स्वभावतः नत मुख हो जाता है। दिति को अपने पति के साथ निन्दनीय संभोग करने के बाद चेत हुआ। ऐसे संभोग की वेश्यावृत्ति की तरह भर्त्सना की जाती है। दूसरे शब्दों में, यदि नियमों का ठीक से पालन न हो तो अपनी पत्नी के साथ संभोग भी वेश्यावृत्ति के समान है।

दितिरुवाच

न मे गर्भमिमं ब्रह्मभूतानामृषभोऽवधीत् ।

रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥ ३४ ॥

**शब्दार्थ**

दितिः उवाच—सुन्दरी दिति ने कहा; न—नहीं; मे—मेरा; गर्भम्—गर्भ; इमम्—यह; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; भूतानाम्—सारे जीवों का; ऋषभः—सारे जीवों में सबसे नेक; अवधीत्—मार डाले; रुद्रः—शिवजी; पतिः—स्वामी; हि—निश्चय ही; भूतानाम्—सारे जीवों का; यस्य—जिसका; अकरवम्—मैंने किया है; अंहसम्—अपराध।

सुन्दरी दिति ने कहा : हे ब्राह्मण, कृपया ध्यान रखें कि समस्त जीवों के स्वामी भगवान् शिव द्वारा मेरा यह गर्भ नष्ट न किया जाय, क्योंकि मैंने उनके प्रति महान् अपराध किया है।

**तात्पर्य :** दिति को अपने अपराध का भान था और वह चाहती थी कि शिवजी उसे क्षमा कर दें। शिवजी के दो लोकप्रिय नाम हैं—रुद्र तथा आशुतोष। वे तुरन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और क्षण भर में तुष्ट हो जाते हैं। दिति जानती थी कि तुरन्त क्रुद्ध होने के कारण वे उस गर्भ को नष्ट कर सकते हैं जिसे उसने अवैध रीति से प्राप्त किया था। किन्तु वे आशुतोष भी हैं, अतएव उसने अपने ब्राह्मण पति से शिवजी को शान्त करने में सहायक बनने के लिए अनुनय-विनय की, क्योंकि उसका पति शिवजी का महान् भक्त था। दूसरे शब्दों में, हो सकता है कि शिवजी दिति पर क्रुद्ध हों, क्योंकि उसने अपने पति को नियम का उल्लंघन करने के लिए बाध्य किया था, किन्तु वे उसके पति की प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सकते थे। इसलिए उसने अपने पति के माध्यम से क्षमायाचना के लिए निवेदन किया। उसने शिवजी से इस प्रकार प्रार्थना की।

नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ।

शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥ ३५ ॥

**शब्दार्थ**

नमः—नमस्कार; रुद्राय—क्रुद्ध शिवजी को; महते—महान् को; देवाय—देवता को; उग्राय—उग्र को; मीढुषे—समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाले को; शिवाय—सर्व कल्याण-कर को; न्यस्त-दण्डाय—क्षमा करने वाले को; धृत-दण्डाय—तुरन्त दण्ड देने वाले को; मन्यवे—क्रुद्ध को।

मैं उन क्रुद्ध शिवजी को नमस्कार करती हूँ जो एक ही साथ अत्यन्त उग्र महादेव तथा समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाले हैं। वे सर्वकल्याणप्रद तथा क्षमाशील हैं, किन्तु उनका क्रोध उन्हें तुरन्त ही दण्ड देने के लिए चलायमान कर सकता है।

तात्पर्य : दिति ने बहुत ही चतुराई से शिवजी से कृपा के लिए प्रार्थना की। उसने प्रार्थना की: “भगवान् मुझे रुला सकते हैं, किन्तु वे चाहें तो मेरा सदन बन्द करा सकते हैं, क्योंकि वे आशुतोष हैं। वे इतने महान् हैं कि यदि चाहें तो मेरे गर्भ को तुरन्त नष्ट कर सकते हैं, किन्तु अपनी कृपा द्वारा वे मेरी यह इच्छा भी पूरी कर सकते हैं कि मेरा गर्भ विनष्ट न हो। चूँकि वे सर्वमंगलकारी हैं, अतएव मुझे दण्ड देने की अपेक्षा क्षमा करना उनके लिए कठिन नहीं है, यद्यपि वे मुझे दण्ड देने को उद्यत हैं, क्योंकि मैंने उनके महान् क्रोध को जगाया है। वे मनुष्य की तरह प्रतीत होते हैं, किन्तु वे सभी मनुष्यों के स्वामी हैं।”

स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ।

व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह; नः—हम पर; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों; भामः—बहनोई; भगवान्—समस्त ऐश्वर्यों वाले व्यक्ति; उरु—अति महान्; अनुग्रहः—कृपालु; व्याधस्य—शिकारी का; अपि—भी; अनुकम्प्यानाम्—कृपा के पात्रों का; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; देवः—आराध्य स्वामी; सती-पतिः—सती ( साध्वी ) के पति।

वे हम पर प्रसन्न हों, क्योंकि वे मेरी बहिन सती के पति, मेरे बहनोई हैं। वे समस्त स्त्रियों के आराध्य देव भी हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों के व्यक्ति हैं और उन स्त्रियों के प्रति कृपा प्रदर्शित कर सकते हैं, जिन्हें असभ्य शिकारी भी क्षमा कर देते हैं।

तात्पर्य : शिवजी दिति की एक बहिन सती के पति हैं। दिति ने अपनी बहिन सती की प्रसन्नता का आह्वान किया जिससे सती अपने पति से उसे क्षमा कर देने के लिए आग्रह कर सकें। इसके अतिरिक्त, शिवजी समस्त स्त्रियों के आराध्य स्वामी हैं। वे स्वभावतः स्त्रियों के प्रति अतीव दयालु हैं, जिन पर असभ्य शिकारी तक कृपा प्रदर्शित करते हैं। चूँकि शिवजी स्वयं स्त्रियों की संगति में रहते हैं, अतएव वे उनके दोषपूर्ण स्वभाव को भलीभाँति जानते हैं और वे दिति के अपरिहार्य अपराध को

गम्भीरता से नहीं भी लें जो उसके दोषपूर्ण स्वभाव के कारण हो गया था। प्रत्येक कुमारी शिवजी की भक्तिन समझी जाती है। दिति को अपने बाल्यकाल की शिवपूजा का स्मरण हो आया और उसने दया की भीख माँगी।

मैत्रेय उवाच

स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ।  
निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—महर्षि मैत्रेय ने कहा; स्व-सर्गस्य—अपनी ही सन्तानों का; आशिषम्—कल्याण; लोक्याम्—संसार में; आशासानाम्—इच्छा करते हुए; प्रवेपतीम्—काँपते हुए; निवृत्त—टाल दिया; सन्ध्या-नियमः—संध्याकालीन विधि-विधान; भार्याम्—पत्नी से; आह—कहा; प्रजापतिः—जनक।

मैत्रेय ने कहा : तब महर्षि कश्यप ने अपनी पत्नी को सम्बोधित किया जो इस भय से काँप रही थी कि उसके पति का अपमान हुआ है। वह समझ गई कि उन्हें संध्याकालीन प्रार्थना करने के नैतिक कर्म से विरत होना पड़ा है, फिर भी वह संसार में अपनी सन्तानों का कल्याण चाहती थी।

कश्यप उवाच

अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ।  
मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

कश्यपः उवाच—विद्वान् ब्राह्मण कश्यप ने कहा; अप्रायत्यात्—दूषण के कारण; आत्मनः—मन के; ते—तुम्हारे; दोषात्—अपवित्र होने; मौहूर्तिकात्—मुहूर्त भर में; उत—भी; मत्—मेरा; निदेश—निर्देश; अतिचारेण—अत्यधिक उपेक्षा करने से; देवानाम्—देवताओं का; च—भी; अतिहेलनात्—अत्यधिक अवहेलित होकर।

विद्वान् कश्यप ने कहा : तुम्हारा मन दूषित होने, मुहूर्त विशेष के अपवित्र होने, मेरे निर्देशों की तुम्हारे द्वारा उपेक्षा किये जाने तथा तुम्हारे द्वारा देवताओं की अवहेलना होने से सारी बातें अशुभ थीं।

तात्पर्य : समाज में अच्छी सन्तान पाने के लिए शर्तें हैं कि पति धार्मिक तथा कर्मकाण्डीय नियमों में अनुशासित हो और पत्नी पतिपरायणा हो। *भगवद्गीता* (७.११) में कहा गया है कि धार्मिक नियमों के अनुसार संभोग कृष्णभावनामृत का स्वरूप है। संभोग करने के पूर्व पति तथा पत्नी दोनों को अपनी मानसिक स्थिति, काल विशेष, पति-निर्देश तथा देवताओं के प्रति आज्ञाकारिता पर विचार करना



चाहिए। वैदिक समाज के अनुसार यौन जीवन के लिए उपयुक्त शुभ समय होता है, जो गर्भाधान का समय कहलाता है। दिति ने शास्त्रीय आदेश के सभी नियमों का उल्लंघन किया। इसलिए शुभ संतानें पाने के हेतु अतीव उत्सुक होने पर भी उसे यह बताया गया कि उसकी सन्तानें ब्राह्मण के पुत्र होने के योग्य नहीं होंगी। यहाँ पर स्पष्ट संकेत है कि ब्राह्मण का पुत्र सदैव ब्राह्मण नहीं होता। रावण तथा हिरण्यकशिपु जैसे पुरुष वस्तुतः ब्राह्मणों से उत्पन्न थे, किन्तु उन्हें ब्राह्मण के रूप में स्वीकार नहीं किया गया, क्योंकि इनके पिताओं ने उनके जन्म के लिए विधि-विधानों का पालन नहीं किया था। ऐसी सन्तानें असुर या राक्षस कहलाती हैं। पूर्वकाल में अनुशासन विधियों की लापरवाही से केवल एक या दो राक्षस थे, किन्तु कलियुग में तो यौन जीवन पर कोई अनुशासन है ही नहीं। तब फिर कोई अच्छी सन्तान की आशा कैसे कर सकता है? निश्चय ही अवांछित सन्तानें समाज में सुख का स्रोत नहीं हो सकतीं, किन्तु कृष्णभावनामृत के माध्यम से ईश्वर के नाम का उच्चारण करने से वे मानव-स्तर तक ऊपर उठ सकते हैं। मानव समाज के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु का यह अद्वितीय योगदान है।

भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ।

लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

भविष्यतः—जन्म लेगा; तव—तुम्हारा; अभद्रौ—दो अभद्र पुत्र; अभद्रे—हे अभागिन; जाठर-अधमौ—निन्दनीय गर्भ से उत्पन्न; लोकान्—सारे लोकों; स-पालान्—उनके शासकों समेत; त्रीन्—तीन; चण्डि—गर्बीली; मुहुः—निरन्तर; आक्रन्-दयिष्यतः—शोक के कारण बनेंगे।

हे अभिमानी स्त्री! तुम्हारे निन्दित गर्भ से दो अभद्र पुत्र उत्पन्न होंगे। अरी अभागिन! वे तीनों लोकों के लिए निरन्तर शोक का कारण बनेंगे।

तात्पर्य : अभद्र पुत्रों का जन्म उनकी माता के निन्दित गर्भ से होता है। भगवद्गीता (१.४०) में कहा गया है, “ जब भी धार्मिक जीवन के विधि-विधानों की जानबूझकर उपेक्षा की जाती है, तो स्त्री जाति दूषित हो जाती है और इसके फलस्वरूप अवांछित सन्तानें उत्पन्न होती हैं।” यह बालकों पर विशेषरूप से लागू होता है। यदि माता अच्छी नहीं है, तो अच्छे पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकते। विद्वान् कश्यप मुनि पहले से ही उन पुत्रों के चरित्र को माँप सके जो दिति के निन्दित गर्भ से जन्म लेंगे। गर्भ की निन्दा की गई थी, क्योंकि माता अत्यधिक कामोन्मुख थी और इस तरह वह शास्त्रों के सारे नियमों

तथा आदेशों का उल्लंघन कर रही थी। समाज में जहाँ ऐसी स्त्रियों की प्रधानता होती है, वहाँ अच्छी सन्तानों की उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ।  
स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥ ४० ॥

**शब्दार्थ**

प्राणिनाम्—जब जीवों का; हन्यमानानाम्—मारे जाते हुए; दीनानाम्—दीनों का; अकृत-आगसाम्—निर्दोषों का; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; निगृह्यमाणानाम्—सताये जाते हुआओं का; कोपितेषु—क्रुद्ध हुआओं का; महात्मसु—महात्माओं का।

वे दीन, निर्दोष जीवों का वध करेंगे, स्त्रियों को सताएँगे तथा महात्माओं को क्रोधित करेंगे।

**तात्पर्य :** जब दीन निर्दोष जीवों का वध किया जाता है, स्त्रियों को सताया जाता है तथा कृष्णभावनामृत में लगे महात्माओं को क्रोधित किया जाता है, तो आसुरी कार्यों की प्रधानता होती है। आसुरी समाज में जीभ की तुष्टि के लिए दीन पशुओं की हत्या की जाती है तथा स्त्रियों को अनावश्यक यौन लिप्तता द्वारा सताया जाता है। जहाँ पर स्त्रियाँ तथा मांस हों वहाँ पर सुरा तथा यौन लिप्तता भी अवश्य होगी। जब समाज में इनकी प्रधानता होती है, तो या तो स्वयं भगवान् या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि द्वारा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होने की अपेक्षा की जाती है।

तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाल्लोकभावनः ।  
हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन्शतपर्वधृक् ॥ ४१ ॥

**शब्दार्थ**

तदा—उस समय; विश्व-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के स्वामी; क्रुद्धः—अतीव क्रोध में; भगवान्—भगवान्; लोक-भावनः—सामान्य जनों का कल्याण चाहने वाले; हनिष्यति—वध करेगा; अवतीर्य—स्वयं अवतरित होकर; असौ—वह; यथा—मानो; अद्रीन्—पर्वतों को; शत-पर्व-धृक्—वज्र का नियन्ता ( इन्द्र )।

उस समय ब्रह्माण्ड के स्वामी पुरुषोत्तम भगवान् जो कि समस्त जीवों के हितैषी हैं अवतरित होंगे और उनका इस तरह वध करेंगे जिस तरह इन्द्र अपने वज्र से पर्वतों को ध्वस्त कर देता है।

**तात्पर्य :** जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है; भगवान् भक्तों का उद्धार करने तथा दुष्टों का वध करने के लिए अवतार रूप में आते हैं। ब्रह्माण्ड तथा सबों के स्वामी दिति के पुत्रों का वध करने के लिए प्रकट होंगे, क्योंकि वे भगवद्भक्तों का अपमान करेंगे। भगवान् के अनेक अभिकर्ता हैं यथा इन्द्र, चन्द्र, वरुण, देवी दुर्गा तथा काली जो संसार के किसी भी भयानक दुष्ट को दण्ड दे सकते

हैं। वज्र द्वारा पर्वतों के ध्वस्त किये जाने का दृष्टान्त अति उपयुक्त है। ब्रह्माण्ड में, पर्वत को सबसे सुदृढ़ निर्मित वस्तु माना जाता है फिर भी भगवान् की व्यवस्था द्वारा इसे आसानी से ध्वस्त किया जा सकता है। भगवान् को किसी सुदृढ़ निर्मित वस्तु का संहार करने के लिए अवतरित होने की आवश्यकता नहीं है, वे तो केवल अपने भक्तों के हेतु आते हैं। हर व्यक्ति को प्रकृति द्वारा प्रदत्त कष्टों को भोगना पड़ता है, किन्तु दुष्टों के कार्य यथा निर्दोष लोगों तथा पशुओं का वध या स्त्रियों का सताया जाना हर एक के लिए हानिकारक है, अतः वे भक्तों के लिए पीड़ा का स्रोत बनते हैं, इसलिए भगवान् अवतरित होते हैं। वे अपने उत्कट भक्तों को राहत देने के लिए ही अवतरित होते हैं। भगवान् द्वारा दुष्ट का वध भी उस दुष्ट के प्रति भगवान् की कृपा है यद्यपि बाह्यतः भगवान् भक्त का ही पक्ष लेते हैं। चूँकि भगवान् सर्वोच्च हैं, अतएव दुष्टों का वध करने तथा भक्तों का पक्ष लेने के उन के कार्यों में कोई भेद नहीं है।

दितिरुवाच

वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ।

आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्प्रभो ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

दिति: उवाच—दिति ने कहा; वधम्—मारा जाना; भगवता—भगवान् द्वारा; साक्षात्—प्रत्यक्ष रूप से; सुनाभ—अपने सुदर्शन चक्र द्वारा; उदार—अत्यन्त उदार; बाहुना—बाहों द्वारा; आशासे—मेरी इच्छा है; पुत्रयोः—पुत्रों की; मह्यम्—मेरे; मा—कभी ऐसा न हो; क्रुद्धात्—क्रोध से; ब्राह्मणात्—ब्राह्मण के; प्रभो—हे पति।

दिति ने कहा : यह तो अति उत्तम है कि मेरे पुत्र भगवान् द्वारा उनके सुदर्शन चक्र से उदारतापूर्वक मारे जायेंगे। हे मेरे पति, वे ब्राह्मण-भक्तों के क्रोध से कभी न मारे जाँय।

तात्पर्य : जब दिति ने अपने पति से यह सुना कि उसके पुत्रों के कार्यों से बड़े बड़े महात्मा क्रोधित होंगे तो वह अत्यधिक चिन्तित हो उठी। उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि उसके पुत्र ब्राह्मणों के क्रोध से मारे जाँए। जब ब्राह्मण किसी पर क्रुद्ध होते हैं, तो उस समय भगवान् प्रकट नहीं होते, क्योंकि ब्राह्मण-क्रोध अपने आप में पर्याप्त होता है। किन्तु वे तब अवश्य प्रकट होते हैं जब उनका भक्त केवल दुखी होता है। भक्त कभी भी दुष्टों द्वारा दिये जाने वाले कष्टों के कारण भगवान् से प्रकट होने की प्रार्थना नहीं करता और वह रक्षा करने के लिए याचना करके उन्हें कष्ट नहीं देता। प्रत्युत भगवान् ही भक्तों को संरक्षण प्रदान करने के लिए चिन्तित रहते हैं। दिति भलीभाँति जानती थी कि भगवान् द्वारा उसके पुत्रों का वध भी उनकी कृपा ही होगी, अतएव वह कहती है कि भगवान् का

चक्र तथा उनकी बाहें उदार हैं। यदि कोई भगवान् के चक्र द्वारा मारा जाता है और इस तरह वह भगवान् की बाहें देखने का भाग्यशाली होता है, तो यही उसकी मुक्ति के लिए पर्याप्त है। ऐसा सौभाग्य बड़े बड़े मुनियों को भी नहीं मिल पाता।

न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ।

नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥ ४३ ॥

#### शब्दार्थ

न—कभी नहीं; ब्रह्म-दण्ड—ब्राह्मण द्वारा दिया गया दण्ड; दग्धस्य—इस तरह से दण्डित होने वाले का; न—न तो; भूत-भय-दस्य—उसका, जो जीवों को सदा डराता रहता है; च—भी; नारकाः—नरक जाने वाले; च—भी; अनुगृह्णन्ति—कोई अनुग्रह करते हैं; याम् याम्—जिस जिस को; योनिम्—जीव योनि को; असौ—अपराधी; गतः—जाता है।

जो व्यक्ति ब्राह्मण द्वारा तिरस्कृत किया जाता है या जो अन्य जीवों के लिए सदैव भयप्रद बना रहता है, उसका पक्ष न तो पहले से नरक में रहने वालों द्वारा, न ही उन योनियों में रहने वालों द्वारा लिया जाता है, जिसमें वह जन्म लेता है।

तात्पर्य : तिरस्कृत जीव योनि का व्यावहारिक उदाहरण कुत्ता है। कुत्ते इतने अधिक तिरस्कृत रहते हैं कि वे अपने ही बिरादरी वालों पर तनिक भी समवेदना नहीं दिखाते।

#### कश्यप उवाच

कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ।

भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४४ ॥

पुत्रस्यैव च पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ।

गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

कश्यपः उवाच—विद्वान् कश्यप ने कहा; कृत-शोक—शोक कर चुकने पर; अनुतापेन—पश्चात्ताप द्वारा; सद्यः—तुरन्त; प्रत्यवमर्शनात्—उचित विचार-विमर्श द्वारा; भगवति—भगवान् के प्रति; उरु—अत्यधिक; मानात्—प्रशंसा; च—तथा; भवे—शिव के प्रति; मयि अपि—मुझको भी; च—तथा; आदरात्—आदर से; पुत्रस्य—पुत्र का; एव—निश्चय ही; च—तथा; पुत्राणाम्—पुत्रों का; भविता—उत्पन्न होगा; एकः—एक; सताम्—भक्तों का; मतः—अनुमोदित; गास्यन्ति—प्रचार करेगा; यत्—जिसको; यशः—ख्याति; शुद्धम्—दिव्य; भगवत्—भगवान् को; यशसा—ख्याति से; समम्—समान रूप से।

विद्वान् कश्यप ने कहा : तुम्हारे शोक, पश्चात्ताप तथा समुचित वार्तालाप के कारण तथा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में तुम्हारी अविचल श्रद्धा एवं शिवजी तथा मेरे प्रति तुम्हारी प्रशंसा के कारण भी तुम्हारे पुत्र ( हिरण्यकशिपु ) का एक पुत्र ( प्रह्लाद ) भगवान् द्वारा अनुमोदित भक्त होगा और उसकी ख्याति भगवान् के ही समान प्रचारित होगी।

योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः ।  
निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥ ४६ ॥

**शब्दार्थ**

योगैः—शुद्धिकरण की विधि से; हेम—सोना; इव—सदृश; दुर्वर्णम्—निम्न गुण; भावयिष्यन्ति—शुद्ध कर देगा; साधवः—साधु पुरुष; निर्वैर-आदिभिः—शत्रुता इत्यादि से मुक्त होने के अभ्यास से.; आत्मानम्—आत्मा; यत्—जिसका; शीलम्—चरित्र; अनुवर्तितुम्—चरणचिह्नों का अनुगमन करना ।

उसके पदचिह्नों का अनुसरण करने के लिए सन्त पुरुष शत्रुता से मुक्त होने का अभ्यास करके उसके चरित्र को आत्मसात् करना चाहेंगे जिस तरह शुद्धिकरण की विधियाँ निम्न गुण वाले सोने को शुद्ध कर देती हैं ।

**तात्पर्य :** योगाभ्यास जो कि अपने जीवन को शुद्ध करने की विधि है, वह मुख्यतः आत्मसंयम पर निर्भर है। आत्मसंयम के बिना शत्रुता से मुक्ति का अभ्यास नहीं किया जा सकता। बद्ध अवस्था में हर जीव अन्य जीव से ईर्ष्या करता है, किन्तु मुक्त अवस्था में शत्रुता का अभाव होता है। प्रह्लाद महाराज अनेकानेक प्रकारों से अपने पिता द्वारा सताये गये थे फिर भी अपने पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने भगवान् से अपने पिता के मोक्ष हेतु प्रार्थना की। उन्होंने कोई और वर नहीं माँगा, अपितु उन्होंने यही प्रार्थना की कि उनका नास्तिक पिता मोक्ष पाए। उन्होंने कभी किसी भी ऐसे व्यक्ति को शाप नहीं दिया जो उनके पिता के कहने पर उन्हें सताता था ।

यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ।  
स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥ ४७ ॥

**शब्दार्थ**

यत्—जिसके; प्रसादात्—कृपा से; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; प्रसीदति—सुखी बनता है; यत्—जिसके; आत्मकम्—सर्वव्यापक होने से; सः—वह; स्व-दृक्—अपने भक्तों की विशेष परवाह करने वाले; भगवान्—भगवान्; यस्य—जिसका; तोष्यते—प्रसन्न होता है; अनन्यया—बिना विचलन के; दृशा—बुद्धि से ।

हर व्यक्ति उनसे प्रसन्न रहेगा, क्योंकि ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता भगवान् सदैव ऐसे भक्त से तुष्ट रहते हैं, जो उनके अतिरिक्त और किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता ।

**तात्पर्य :** पुरुषोत्तम भगवान् सर्वत्र परमात्मा रूप में स्थित हैं और वे जिस किसी को भी चाहें उसे अपनी इच्छानुसार आदेश दे सकते हैं। दिति का होने वाला पौत्र, जिसके महान् भक्त होने की भविष्यवाणी की गई थी, सबों का यहाँ तक कि अपने पिता के शत्रुओं का भी प्रिय होगा, क्योंकि

उसके पास भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई दृष्टि नहीं होगी। शुद्ध भक्त अपने आराध्य ईश की उपस्थिति सर्वत्र देखता है। भगवान् इस प्रकार से आदान-प्रदान करते हैं कि वे सारे जीव भी जिनमें भगवान् परमात्मा रूप में निवास कर रहे होते हैं शुद्ध भक्त को चाहते हैं, क्योंकि भगवान् उनके हृदयों में उपस्थित रहता है और वे उन्हें अपने भक्त के साथ मैत्री भाव रखने के लिए आदेश दे सकते हैं। इतिहास में ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिसमें उग्र से उग्र पशु भी भगवान् के शुद्ध भक्त के प्रति मित्रवत् बन गया।

स वै महाभागवतो महात्मा

महानुभावो महतां महिष्ठः ।

प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये

निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निश्चय ही; महा-भागवतः—सर्वोच्च भक्त; महा-आत्मा—विशाल बुद्धि; महा-अनुभावः—विशाल प्रभाव; महाताम्—महात्माओं का; महिष्ठः—सर्वोच्च; प्रवृद्ध—पूर्णतया प्रौढ़; भक्त्या—भक्ति से; हि—निश्चय ही; अनुभावित—भाव की अनुभाव दशा को प्राप्त; आशये—मन में; निवेश्य—प्रवेश करके; वैकुण्ठम्—आध्यात्मिक आकाश में; इमम्—इसको ( भौतिक जगत ) को; विहास्यति—छोड़ देगा।

भगवान् का सर्वोच्च भक्त विशाल बुद्धि तथा विशाल प्रभाव वाला होगा और महात्माओं में सबसे महान् होगा। परिपक्व भक्तियोग के कारण वह निश्चय ही दिव्य भाव में स्थित होगा और इस संसार को छोड़ने पर वैकुण्ठ में प्रवेश करेगा।

तात्पर्य : भक्तियोग में दिव्य प्रगति की तीन अवस्थाएँ हैं, जिन्हें स्थायी भाव, अनुभाव तथा महाभाव कहा जाता है। निरन्तर पूर्ण भगवत्प्रेम स्थायी-भाव कहलाता है और जब यह किसी विशेष दिव्य सम्बन्ध में सम्पन्न किया जाता है, तो अनुभाव कहलाता है। किन्तु महाभाव की अवस्था भगवान् की निजी ह्लादिनी शक्ति के मध्य ही दृष्टिगोचर होती है। ऐसा समझा जाता है कि दिति का पौत्र अर्थात् प्रह्लाद महाराज निरन्तर भगवान् का ध्यान करेगा और उनके कार्यकलापों का बारम्बार कथन करेगा। ध्यान में निरन्तर व्यस्त रहने के कारण वह अपना भौतिक शरीर त्याग कर वैकुण्ठलोक चला जायेगा। अब भी ऐसा ध्यान भगवान् के नाम के कीर्तन तथा श्रवण द्वारा अधिक सुविधापूर्वक सम्पन्न किया जाता है। इस कलियुग के लिए इसकी विशेष रूप से संस्तुति की जाती है।

अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो  
हृष्टः परद्वर्षा व्यथितो दुःखितेषु ।  
अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता  
नैदाधिकं तापमिवोदुराजः ॥ ४९ ॥

**शब्दार्थ**

अलम्पटः—पुण्यशील; शील-धरः—योग्य; गुण-आकरः—समस्त सद्गुणों की खान; हृष्टः—प्रसन्न; पर-ऋद्ध्या—अन्य के सुख से; व्यथितः—दुखी; दुःखितेषु—अन्यों के दुख में; अभूत-शत्रुः—शत्रुरहित, अजातशत्रु; जगतः—सारे ब्रह्माण्डका; शोक-हर्ता—शोक का विनाशक; नैदाधिकम्—ग्रीष्मकालीन घाम से; तापम्—कष्ट; इव—सदृश; उदु-राजः—चन्द्रमा ।

वह समस्त सद्गुणों का अतीव सुयोग्य आगार होगा, वह प्रसन्न रहेगा और अन्यों के सुख में सुखी, अन्यों के दुख में दुखी होगा तथा उसका एक भी शत्रु नहीं होगा। वह सारे ब्रह्माण्डों के शोक का उसी तरह नाश करने वाला होगा जिस तरह ग्रीष्मकालीन सूर्य के बाद सुहावना चन्द्रमा ।

तात्पर्य : भगवान् के आदर्श भक्त प्रह्लाद महाराज में समस्त सम्भव मानवीय गुण विद्यमान थे। यद्यपि वे इस जगत के सम्राट थे, किन्तु वे लम्पट या व्यभिचारी न थे। वे बाल्यकाल से ही समस्त सद्गुणों के आगार थे। उन गुणों को गिनाये बिना सारांश रूप में यहाँ बताया गया है कि वे समस्त सद्गुणों से युक्त थे। यही शुद्ध भक्त का लक्षण है। शुद्ध भक्त का सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि वह लम्पट नहीं होता और दूसरा गुण यह है कि वह कष्ट भोग रही मानवता के दुखों को दूर करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है। जीव का सबसे घिनौना कष्ट है कृष्ण की विस्मृति। इसीलिए शुद्ध भक्त सदैव हर एक में कृष्णभावनामृत को जगाने का प्रयास करता रहता है। यह सारे कष्टों की रामबाण ओषधि है।

अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं  
स्वपुरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।  
पौत्रस्तव श्रीललनाललामं  
द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥ ५० ॥

**शब्दार्थ**

अन्तः—भीतर से; बहिः—बाहर से; च—भी; अमलम्—निर्मल; अब्ज-नेत्रम्—कमल नेत्र; स्व-पुरुष—अपना भक्त; इच्छा-अनुगृहीत-रूपम्—इच्छानुरूप शरीर धारण करके; पौत्रः—नाती; तव—तुम्हारा; श्री-ललना—सुन्दर लक्ष्मीजी; ललामम्—अलंकृत; द्रष्टा—देखेगा; स्फुरत्-कुण्डल—चमकीले कुंडलों से; मण्डित—सुशोभित; आननम्—मुख ।

तुम्हारा पौत्र भीतर तथा बाहर से उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन कर सकेगा जिन की

पत्नी सुन्दरी लक्ष्मीजी हैं। भगवान् भक्त द्वारा इच्छित रूप धारण कर सकते हैं और उनका मुखमण्डल सदैव कुण्डलों से सुन्दर ढंग से अलंकृत रहता है।

**तात्पर्य :** यहाँ पर यह भविष्यवाणी की गई है कि दिति के पौत्र प्रह्लाद महाराज ध्यान के द्वारा न केवल अपने भीतर भगवान् का दर्शन कर सकेंगे, अपितु वे उन्हें अपनी आँखों से साक्षात् भी देख सकेंगे। यह साक्षात् दर्शन केवल उसी के लिए सम्भव है, जो कृष्णभावनामृत में बहुत ही उच्चस्थ बढ़ा-चढ़ा हो, क्योंकि भगवान् को भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। भगवान् के नाना नित्य रूप हैं यथा कृष्ण, बलदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, वासुदेव, नारायण, राम, नृसिंह, वराह तथा वामन और भगवान् का भक्त इन सारे विष्णु रूपों को जानता है। शुद्ध भक्त भगवान् के किसी एक नित्य रूप से जुड़ जाता है और भगवान् उसके समक्ष इच्छित रूप में प्रकट होने के लिए प्रसन्न हो जाते हैं। भक्त भगवान् के रूप के बारे में न तो मनमानी कल्पना करता है, न ही वह कभी यह सोचता है कि भगवान् निर्विशेष हैं और अभक्त द्वारा चाहा गया कोई रूप धारण कर सकते हैं। अभक्त को भगवान् के रूप का कोई अनुमान नहीं होता, अतएव वह उपर्युक्त रूपों में से किसी के भी विषय में चिन्तन नहीं कर सकता। किन्तु जब भी कोई भक्त भगवान् का दर्शन करता है, तो वह उन्हें अत्यन्त सुन्दर ढंग से सजे तथा उनकी नित्य संगिनी तथा नित्य सुन्दरी लक्ष्मीजी के साथ देखता है।

मैत्रेय उवाच

श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ।

पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥ ५१ ॥

**शब्दार्थ**

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय मुनि ने कहा; श्रुत्वा—सुनकर; भागवतम्—भगवान् के महान् भक्त होने के लिए; पौत्रम्—पौत्र को; अमोदत—आनन्द का अनुभव किया; दितिः—दिति ने; भृशम्—अत्यधिक; पुत्रयोः—दोनों पुत्रों का; च—भी; वधम्—वध; कृष्णात्—कृष्ण द्वारा; विदित्वा—जानकर; आसीत्—हो गई; महा-मनाः—मन में अतीव हर्षित।

**मैत्रेय मुनि ने कहा :** यह सुनकर कि उसका पौत्र महान् भक्त होगा और उसके पुत्र भगवान् कृष्ण द्वारा मारे जायेंगे, दिति मन में अत्यधिक हर्षित हुई।

**तात्पर्य :** दिति यह जानकर अतीव खिन्न थी कि उसके असामयिक गर्भधारण से उसके पुत्र असुर होंगे और वे भगवान् से युद्ध करेंगे। किन्तु जब उसने सुना कि उसका पौत्र महान् भक्त होगा और उसके दोनों पुत्र भगवान् द्वारा मारे जायेंगे तो वह अतीव तृप्त हो गई। एक महान् ऋषि की पत्नी तथा महान्



प्रजापति दक्ष की पुत्री होने के नाते वह जानती थी कि भगवान् द्वारा मारा जाना परम सौभाग्य है। चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनके हिंसा तथा अहिंसा दोनों कार्य परम स्तर पर होते हैं। भगवान् के ऐसे कार्यों में कोई अन्तर नहीं होता। संसारी हिंसा तथा अहिंसा का भगवान् के कार्यों से कोई सरोकार नहीं होता। उनके द्वारा मारा गया असुर वही फल प्राप्त करता है जितना वह भक्त जो अनेकानेक जन्मों की तपस्या के बाद मोक्ष प्राप्त करता है। यहाँ पर *भृशम्* शब्द सार्थक है, क्योंकि यह सूचित करता है कि दिति अपनी अपेक्षाओं से भी अधिक हर्षित थी।

*इस प्रकार श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के अन्तर्गत “संध्या समय दिति का गर्भधारण” नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।*